IJAER/ July 2012 /Volume-1/Issue-1 ISSN: 2278-9677

International Journal of Arts & Education Research

वैदिक युगीन शिक्षा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

Satish Chandra Yadav
Research Scholar
C.M.J.University, Meghalaya.

Dr Ajay Kumar
H.O.D. Translam College of Law
Mawana Road , Meerut.

प्राचीन काल में दी जाने वाली शिक्षा का आधार परम्परागत अभिवृत्ति थी। अर्थर्ववेद में कहा गया है। ओ इन्द्र तू हमें यह योग्यता भरज तो पिता पुत्र को देता है। सब्र भाव्य में कहा गया है। एक बालक किस प्रकार सीखता है, यह इससे स्पष्ट होता है कि ब्राह्मण का बालक घर में ही वेद मन्त्रों का पीठ सीख लेता है उस के मन पर वेदों की छाप अमिट रहती है। शिक्षा के समय कतिपवय संस्कारों की पूर्ति भी आवश्यक थी इन संस्कारों के पश्चात् शनै–शनै बालक अपनी रूची के तथा अन्य विषय पढता था। इस सम्बन्ध में सनत् कुमार ने नारद से पूछा था बताओ तुमनें क्या पढा फिर में बताउगा कि तुनमे क्या नही पढा, पुराण पढे, में वैदों के वेद व्याकरण को भी जानता हूँ। पित् (पितृ भक्ति क नियम) राशि अर्थात् गणित दैव्य निधि समय विज्ञान देव–विद्या सर्प एवं देवजनविद्या नृत्य संगीत क्रीड़ा सुगन्धी निर्माण आदि पढा हूँ।

विद्यालय में स्मरण को ज्ञान का आधार माना गया था। ऐतरेय ब्राह्माण मे स्मरण की विधियों पर भी प्रकाश डाला के न्यायसूत्र में ध्यान पुनर्स्मरण अभिज्ञान विचार साहचर्य तथा पुनरावृत्ति के पास स्मरण कराने पर बल दिया है। याज्ञबल्वय स्मृति तथा पुनरावृ तमे शुद्धता परबल दिया जाना आवश्यक था। सनत् कुमार ने सरल से कठिन की ओर वाले सूत्र पर अधिक बल दिया हे। विषय स्पष्ट करने` लिए दृष्टान्तों का प्रयोग किया जाता था। बिना समझे रटने की निन्दा की जाती थी। निघुन्टु तथा निरूक्त में कहा गया है। सामान्य कार्य करने अन्धें होकर रटने से व्यक्ति विद्वान नही बनता विद्वान के लिये विद्यार्थी को वेदों के अर्थ समझनें चाहिये कौटिल्य ने कौशल के विकास पर बल दिया है। शिक्षण के समय प्रश्नोत्तर विधि के द्वारा तर्क शक्ति का विकास किया जाता है।

गुरूकुल शिक्षा पद्धति

1. **शिक्षण व्यवस्था**–वैदिक काल में गुयकुल प्रणाली थी। छात्र, माता–पिता से अलग गुरू के घर पर शिक्षा प्राप्त्त करता था। यह गुरूकुल पद्धति कहलाती थी। छात्र गुरू–गृह में ब्रहाचर्य का पालन करता हुआ शिक्षा प्राप्त करता था। वेद कालीन शिक्षा प्रणाली में आरम्भिक युग में शिक्षक प्रमुख था किन्तु उत्तर काल में शिष्य प्रमुख हो गया । श्रमण, मनन, निधिध्यासान शिक्षण की प्रक्रिया थी । गुरूकुल शिक्षा के केन्द्र थे। गुरूकुलों में योग्य तथा चरित्रवान व्यक्ति ही शिक्षा देते थे। इन गुरूकुलों में छात्र 12 वर्ष तक विद्यालय करता था। इान सुधा को शान्त करने के लिये परिषदे थी। समय–समय पर विद्वानों के सम्मेलन भी होत रहते थे। इनमें प्रतिभाशाली विद्वानों को पुरकृत भी किया जाताा था

(i) **चरण**– इनमें एक शिक्षक एक वेद की शिक्षा देता था।
(ii) **घटिका** – धर्म तथा दर्शन की उच्च शिक्षा कई शिक्षक देते थे।
(iii) **टोल**– एक ही शिक्षक केवल संस्कृत भाषा की शिक्षा देता था।
(iv) **परिषद** – लगभग 10 शिक्षकों की एक परिषद अनेक विषयों की शिक्षा प्रदान करती थी।
(v) **चतुष्पथी**– इसे ब्राह्मणीय विद्यालय भी कहा जाता था। एक ही शिक्षक दर्शन, पुरांण, विधि तथा व्याकरण की शिक्षा देता था।

(vi) **विशेष विद्यालय–** विषय विशेष–चिकित्सा, विद्वान, कृषि, वाणिज्य, सैन्य–शिक्षा की व्यवस्था तथा व्याकरण की शिक्षा देता था।

2. उपनय संस्कार– उपनय का अर्थ है पास ले जाना। उपनय संस्कार के प्श्चात् ही बालक को शिक्षेपार्जन के लिये गुरू के पास ले जाय जाता था। उपनयन संस्कार की आयु ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्यों के लिये क्रमशरू8 11 तथा 12 वर्ष थी। उपनय संस्कार से शिक्षा का आरम्भ होता था। यह संस्कार शैशव से बाल्यावस्था में प्रवेश करने का सूचक है। कालान्तर में यह संस्कार केवल ब्राह्मणों के लिए ही रह गया।

3. ब्रह्मचर्य– हर छात्र को जीवन के विशिष्ट भाग में ब्रह्मचर्य पडता था। आचरण की शुद्धता को प्रमुखता दी जाती है। अविवाहित छात्रों को ही गुरूकुल में प्रवेश मिलता था। छात्र–जीवन में पदार्पण करने के बाद छात्र मेखला धारणा करता । मेखला वर्ण के अनुसार धारण की जाती है। ब्राह्मण मूज की क्षत्रीय तांत की तथा वैश्व ऊन की मेखला धारण करते थे। पहनने के वस्त्र भी इस क्रम मे रेशम, ऊन, सूत आदि के होते थे। सुगन्धित या मादक वस्तुओं का उपयोग निशिद्ध था।

4. गुरू सेवा– हर छात्र को गुरूकुल में रहते हुए गुरू–सेवा अनिवार्य रूप से करनी पडती थी गुरू की आज्ञा का उल्लंघन करना पाप था और इसके लिये कठोर दण्ड दिया जाता था। आचार्य को दैनिक आवश्यकता की वस्तुये उपलब्ध करना जैसे, दातून स्नन के लिये जी की व्यवस्था छात्र की प्रमुख कर्त्तव्य था। गुरू भी छात्रों से हनी ली जाती थी।

शिक्षा –कार्य का आरम्भ प्रातःकाल से होता था। छात्र अपनी दैनिक क्रियाओं से निवृत्त होकर हवन आदि से भागलेते थे। सूर्यास्त के समय हवनादि होता था और फिर इसी प्रकार दिन की क्रियायें समाप्त हो जाती थी।

5. शिक्षा–वृत्ति–छात्र को अपना तथा गुरू का पोषण भिक्षावृत्ति द्वारा करना पड़ता था। भिक्षा–वृत्ति को बुरा नही समझा जाता था। हर गृहस्थ छात्र को भिक्षा अवश्यक दे था क्योंकि वह जानता था कि उसका पुत्र भी कही भिक्षा माँगा रहा होगा। छात्रों के लिये भिक्षा का नियम बनानें का कारण यह था कि भिक्षा से जीवन में विनय आती थी। छात्र को यह अनुभूति होती थी कि समाज की सेवा तथा सहानुभूति से ही ज्ञान प्राप्ति व जीविकोपार्जन किया जा सकता है। भिक्षा–वृत्ति निर्धन छात्रों के लिए अनिवार्य थी, परन्तु धनी छात्रों के लिये यह सामान्य नियम था। छात्र जीवन की समाप्ति के पश्चात् भिक्षा–वित्त निषिद्ध थी।

6. व्यावहारिकता– उस समय की शिक्षा मे जीवन की आवश्यक क्रियायें सम्मिलित थी। गौ–पालन कृषि आदि दी जाती थी। इसके साथ–साथ चिकित्सा की शिक्षा भी दी जाती थी। डॉक्टर अल्तेकर के अनुसार–शिक्षा का उद्देश्य अनेक विषयों का साधारण ज्ञान मात्र करा देना न था, अपितु इसका आदर्श विभिन्न क्षेत्रों में उच्च कोटि के तज्ञ (विशेषज्ञ) बनाना था। इसी कारण व्यावसायिक शिक्षा में प्रायोगिक शिक्षण बल दिया जाता था।"

7. व्यक्ति के लिए शिक्षा– वैदिक युग मे हर छात्र का विकास करने के लिए गुरू प्रयत्नशील रहता था। वह उनका शरीरिक तथा मानसिक विकास करता था। इस युग मे छात्रों के वैयक्तिक

विकास पर पूरा–पूरा ध्यान दिया जाता था। परन्तु अयोग्यों (विशेषकर नैतिक तथा बौद्धिक दृष्टि से हीनता के लिए शिक्षा की कोई व्यवस्था न थी।

8. अवधि– गुरू–गृह में शिक्षा की अवधि 24 वर्ष की आयु तक होती थी। 25वें वर्ष में शिष्य को गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करना पड़ता था। उस समय छात्रों की तीन श्रेणियों थी 24 वर्ष तक अध्ययन करने वाले–वसु 36 वर्ष तक अध्ययन करने वाले रूद्र 48 वर्ष तक अध्ययन करने वाले आदित्य।

9. पाठ्यक्रम– यद्यपि इस काल में वैदिक साहित्य का अध्ययन ही प्रमुख था परन्तु ऐतिहासिक कक्षायें पौराणिक आख्यान एवं वीर गााथायें भी पाठ्क्रम में सम्मिलित थी। छात्रों को छन्द–शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक था। गणित में रेखागणित का ज्ञान भी दिया जाता था। चारों वेदों–ऋग्वेद, यजुवेंद, सामवेद और अर्थर्ववेद का अध्ययन कराया जाता था। ब्राह्मण साहित्य का निर्माण भी इसी युग मे हुआ पाठ्यक्रम मे ंपरा–अपरा (आध्यात्मिक सांसारिक) विद्या, वेद, वैदिक व्याकरण, कल्पराशि, (गणित) देव–विद्या, ब्रह्म–विद्या ब्रह्म–विद्या भूत–विद्या, देव विद्या, नक्षत्र–विद्या, तर्क दर्शन, निधि, आचार, छात्र–विधि आदि विषयों का अध्ययन कराया जाता था।

10. शिक्षण प्रणाली– इस युग में अध्ययन–अध्यापन गुरू केन्द्रित था। अध्ययन लोक–गीतों की भाँति हुआ करता था। मन्त्रों के अर्थो को समझने एवं उनको व्यवहार में लाने पर जोर दिया जाता था। शिक्षा का माध्यम संस्कृत थ्झी शिक्षण प्राणली इस प्रकार की थी छात्र पाठ को करने के पश्चात् छात्र उस पर मनन करते थे। कठस्थ करने के प्श्चात् छात्र करते थें उच्चारण पर विशेष बल दिया जाता था। वाल–विवाह को भी शिक्षा प्रणाली मे ंस्थान था। शिक्षा प्रणाली शिशिक्षुत्व पर आधारित थी। बालक घर पर रह कर बारह परिवार की भाषा तथा परिवार के व्यवसाय को सीखता था विद्यार्थी को घर पर संस्कार तक बालक में इतनी क्षमता विकसित हो जाती थी कि वह भावी जीवन की तैयारी कर लेता था।

11. गुरू–शिष्य सम्बन्ध – डॉक्टर अल्तेकर – "छात्र तथा अध्यापक के मध्यय सम्बन्ध किसी संस्था के माध्यम से नही अपितु सीधे उन्ही के बीच था। छात्र विद्याध्ययन के लिये उन्ही लब्ध प्रतिष्ठित गुरूओं के पास जाते थे। जिनकी ख्याति विद्धता के कारण थ्झी उस युग में शिष्य गुरूकी तन–मन से सेवा करते थ्झे उनके कर्त्तव्य इस प्रकार थे शिष्य के कर्त्तव्य – शिक्षा माँगना लकडी चुनन पशु चराना पानी भरना अध्ययन करना आज्ञा पालन करना। यदि छात्र पर निन्दा करते थे उनको दण्ड दिया जाता था। गुरू के कर्त्तव्य – अध्ययन छात्रों के वस्त्र–भोजन आदि की व्यवस्था चिकित्सा, सेवा–शुश्रुषा करना गुरू भी योग्य छात्र का उत्साहित करते थे अपनी कन्या का विवाह तक उनसे कर देते थे।

12. गुरू शिष्य के सम्बन्धों का प्रमुख आधर उनकी योग्यता तथा उनकी व्यवहार कुशलता थी। प्राचीन युग में गुरू की योग्यता थ्झी सर्वागता तथा विनय। वृहदारण्य उपनिषद में गार्मेय राजा अजातशत्रु कोउपदेश देते है उपदेश समाप्त होने पर राजात पूछता है। कि क्या सब कुछ यही है। ऋषि कहते है। है। राजा कहता इसके द्वारा ईश्वर को नही जाना जाता है। ऋषि कहता है। तब मुझे अपना शिष्य बना लो। कहना यह है कि पूर्णता की आकांक्षा एवं पूर्णता के ज्ञानकी खोज मे रत् करने वाला ही वास्तविक गुरूहोता है। इसी प्रकार परा–अपरा विद्या की जानकारी रखने वालो ही

वास्तविक गुरू माना जाता था। उसे शिक्षा किल्प व्याकरण छन्द ज्योतिष तथा निरूक्त का ज्ञान होना आवश्यक था मनुने कहा है। अध्यापकका अनिवार्य कर्त्तव्य है कि वह विद्यार्थी के प्रति अपने कर्त्तव्य का निर्वाय करे। वह केवल उन्हे अपने बालक की तरह न रखे अपतु पवित्र विद्या को पढायें और कोई भी विद्या उनसे न छिपाये।

1. स्त्री शिक्षा का स्वभेद –

किसी भी समुदाय में नारी शिक्षा पुरूष की शिक्षा से अधिक जटिल कार्य है। नारी शिक्षा के विषयों में अनेक मत प्रचलित रहे है। पुरूष का अहंभाव नारी एवं नारी शिक्षा के प्रति पूर्वाग्राहित रहा है। वेद–'युग किसी से हीन नही है। उसमें उत्तम स्मरण शक्त है बुद्धि है और किसी भी प्रकार की शिक्षाा की प्राप्त करने की क्षमता है।

नारी की पूर्णता है स्त्रीत्व की पूर्णता होती मातृत्व में इसलिये नारी शिक्षा की प्रकृति भिन्न रही है। उसे घर के कार्य में दक्ष होना चाहिये। इसलिये बालिकाओं की शिक्षा की व्यवस्था घ्ज्ञर की जाती है। इन सब स्थितियों के बावजूद विश्ववरा जुह अपाला घोषा रोमसा लोपामुद्रा सरस्वती आदि स्त्रियों के नाम प्राचीन ग्रन्थों मं मिलते है। जिन्होनें वेदों की ऋचायें रचीं। याज्ञवल्वय ने मैत्रेयी, कोशिकाओं बग्रहाणिन गन्धर्व गृहीता आदि के नाम दिये जिन्होनें शिक्षा प्राप्त की । मनु ने तो यहाँ तक कहा हे कि माता–पिता का कर्त्तव्य है कि विवाह से पूर्व वे बालिका को सर्वाग शिक्षा अवश्यक दे। ललित कलाओं की शिक्षा उन्हे अवश्य मिलनी चाहिये।

2. औद्योगिक शिक्षा

वैदिक युग केवल आध्यात्मिक शिक्षा तक ही सीमित नही था। समाज में वर्ण तथा आश्रम व्यवस्था के कारण व्यावसायिक शिक्षा का निर्धारित रूप हो गया है। ब्राह्मण ऋषि, शिक्षक आदि का कार्य करते है। धर्म शास्त्रों के प्रणयन से छात्र धर्म के अधिकार कर्त्तव्यों का विकास हुआ। तर्कशास्त्र तथा वेदों का अध्ययन क्षत्रियों के लिये अनवार्य था। सैनिक शिक्षा के विभिन्न अंगो का प्रशिक्षण दिया जाता था। संख्या तथ लेकायत ज्ञान, दण्डनीति कृषि पशुपालन तथा व्यापार पशुपालन की शिक्षा दी जाती है। शूद्र कृषि गौपालन तथा प्शुपालन अस्त्र शास्त्र निर्माण शिल्प वस्तु चित्रकला आदि लौकिक की शिक्षा ग्रहण करते थे। अन्य व्यवसायों के आयुवेद तथा चिकित्सों की शिक्षा की व्यस्था थी।

3. शैक्षिक उपलब्धियाँ

प्राचीन की शैक्षिक उपलब्धियों से यह पता चलता है कि शिक्षा का मुख्य लक्ष्य व्यक्ति को समाज को उपयोग सदस्य बनाना था। उस समय की शिक्षा की उपलब्धिया इस प्रकार रही–

(1) **आध्यात्मिक–** शिक्षा में आध्यात्मिकता के विकास पर बल दिया जाता था। देव पितृ, ऋषि तथा समाज ऋण को चुकाने के लिए आश्रम व्यवस्था अपनाई गई।

(2) **माता–पिता की तैयारी–** माता–पिता के मानस को बालक की शिक्षा के लिये तैयार किया जाता था। कहा भी गया है।

माता शत्रु पिता बैरी ये बालों न पाठितः।
ने शोभते सभामध्ये, हंसमध्य बाके यथा।

(3) चरित्र विकास – बाल के चरित्र के विकास पर पूरा–पूरा धयान रखा जाता था। व्यक्ति के सम्पूर्ण विकास पर बल दिया जाता था।

(5) सांसकृतिक प्रसार– राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण और और उसके प्रसार के लिये प्रयत्न किये जाते थे।

(6) निः शुल्क शिक्षा – शिक्षा निःशुल्क थी। शिक्षा का भार समाज तथा राज्य उठाता था। इतना होने पर भी शिक्षा राज्य के नियंत्रण में न थी। समाज की आवश्यकता के अनुरूप शैक्षिक आदर्श निर्धारित किये जाते थे।

(7) गुरूकुल – गुरूकुल मे रहकर बालक शैक्षिक वातावरण के शिक्षा प्राप्त करता था। भिक्षावृत्ति द्वारा अपना भारत वहन करना पडता था। इससे उसमें विनय तथा सहनशीलता विकसित होती थी।

(8) नियम पालन– विद्यार्थी को गुरूकुल के आदर्शे का पालन करना आवश्यक था। उसे भिक्षावृत्ति द्वारा अपना भार वहन करना पड़ता था। इसस`उसमें विनय तथा सहनशीलता विकसित होती थी।

(9) गुण विकास–विद्यार्थी के निर्माण में स्वभाव, संस्कार पोषण तथा परिस्थिति पर विशेष बल दिया जाता था।

(10) स्वाध्याय – स्वाध्याय पर विशेष बल दिया जाता था। स्वाध्याासे चिन्तन मनन का विकास होता था। इससे मानसिक विकास को गति मिलती थी।

(11) संस्कृत – शिक्षा माध्यम देववाणी थी। शिक्षा की अवधि वर्णानुसार 48, 36, 24, एवं 12 वर्ष थी।

(12) मौखिक परीक्षा – परीक्षा प्रणाली मौखिक थी। विद्वत् सभा विद्यार्थी विद्वानों के उत्तर देता था।यदि वह सन्तुष्ट करक सकता तो उसे उपाधि मिल जाती थी। इसमे आचार्य की सम्पति सर्वोपरि थी।

(13) व्यावसायिक शिक्षा – उस समय अनेक प्रकार व्यावसायिक शिक्षा की भी प्रचालन था। सेनिक कृषि, गौ–विद्या, पशु–चिकित्सा, चिकित्सा आदि की शिक्षा भी दी जाती थी।

वेदकालीन शिक्षा और युगबोध

प्राचीन शिक्षा परम्परा का अधिकार समाज–ऋण चुकाने के लिये अध्यापन करते थे। उनका स्थान सर्वोच्च था। प्राचनी काल के उदाहरण हमं आज की शिक्षा को उचित रूप से नियोजित करने में सहायक हो सकते है।

अध्यापकों को प्राचनी काल में गुरूओं का अनुकरण करना चाहिये। वे छात्रों को अपने बच्चों की तरह माने और उनके विकास का पूरा–पूरा ध्यान रखे। अध्यापक को अना आचरण भी ठीक रखना चाहिये क्योंकि छात्रों पर उसका प्रभाव पडता था। यद्यपि बलती मान्याताओं के साथ–साथ शिक्षा भी बदली है। अब विद्यालय–प्रणाली हो गई, शिक्षण के धंटे निश्चित हो गये है छात्रों से शुल्क लिया जाता है, वह अध्यापक का सम्मान न होना। जबकि प्राचीन काल में गुरू प्रमुख अन्तर अब पाया जाता था। छात्रों को भी चाहिये कि वे गुरूओं का उसी प्रकार आदर करें जैसा वे अपने माता–पिता का करते है। गुरू का स्थानतो बहुत ऊँचा है, कहा गया है–

गुरूर्ब्रह्मा गुरूर्विष्णुः गुरूर्देवों महेश्वरः ।
गुरूः साक्षात् परमब्रह्मा, तस्मै श्री गुरूवै नमः।।

अतः शिक्षा का प्रचार तथा प्रसार व्यक्ति की योग्याताओं के आधार पर होना चाहिये, तभी शिक्षा का वा स्तविक रूप निखरेगा।

वैदिक युग के शैक्षिक आदर्श किसी न किसी रूप मे आज भी समाज में मिलते है। वैदिक युग में समजा कर्म के आधार पर विभाजित हो रहा था। कर्म के आधार पर विभाजित हो रहा था। कर्म मनोवृत्तियों पर आधारित था। इसलिये शिक्षा ब्रहामण क्षत्रिय वैश्य तथा शुद्ध की समजा व्यवस्था में ढलने लगी। आज के युग में कर्म तथा जाति अर्थात् वर्ण एवं जाति की कठोरता ने समाज को सीमाओं मे बांध दिया है। शिक्षा इसी प्रकार पर वर्गो में सीमित हो गई शुद्ध वर्ग के लिये शिक्षा के अवसर कम ही है।

अनुशासन हीनता गुरू शिष्य सम्बन्ध तथा शिक्षा पर राज्य का नियंत्रण शिक्षा के इतिहास में घटनें वाली महान घटनायें जिन्होने शिक्षा से बहुत लाभ उठायों जा सकता है। यह लाभ (1) शिक्षा के उद्देश्य के निर्धारण, (2) पाठ्यक्रम निर्माण, (3) विद्यालय संगठन, (4) शिक्षा प्रणाली, (5) सामाजिक चेतना के क्षेत्र में उठायो जा सकता है। गुरू–शिष्य सम्बन्धों की प्राचीन एवं पावन परम्परा अपना कर सामाजिक राष्ट्रीय के संरक्षण की प्रेरणा विश्वबन्धुत्व की भावना का विकास करने में वैदिक कालीन शिक्षा के तत्तव अधिक उपयोग सिद्ध हो सकते है।

BIBLIOGRAPHY

1. सी.वी. गुड–शिक्षा शब्द कोश मेंकग्राहिल बुक कम्पनी, पृष्ठ भूमि 2691.
2. डॉ0 राजबली पाण्डेय–हिन्दू संस्कार, पृ017.
3. प्रोक्ष्णादिजन्य संस्कारो यज्ञांग– रोडाशेस्विसि दृव्य धर्मः।
4. वाचस्पत्य बृहदभिधान 5, पृ0 5188
5. स्नाना चमादि जन्याः संस्कारा देहे उत्पद्यमानाानि
6. तदभिधानानि जीवे कल्पयन्ते, वही, पृ0 5188
7. विसर्ग संस्कार विनीत इत्यासौ नृपेण चक्रे युवराज शब्दाभाक्। रघुवंश 3035
8. संस्कारवत्येव गिरा मनीषी तथा स पूतश्च विभूतिश्च।
9. कुमार सम्भवम् 1.28
10. द्विविधः संस्कारों भवति, ब्राह्मणी देवश्च। गर्भाधानादिः स्मार्तो बाह्य। हा0घ0सू0
11. यज्ञो दानं तपश्चैवं यावनानि मनीषिणाम। पौ.गृ.सू.18.50
12. डॉ0 जयशंकर मिश्र– प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ0 266
13. कार्य शरीरं संस्कारः पावनः प्रत्यय। मनु0 2.26
14. स्वर्गकामी यजेते, पूर्व मीमांसा।
15. ब्राह्मण यमपि तदवत स्यात संस्कारै विधि पूर्वकम। बो0 मिल्म्भम पृ0 139
16. डॉ0 राजबली पाण्डेयः हिन्दू संस्कार, पृ0 31